सामायिक से समता का अभ्यास

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

सामायिक श्रमण-श्रमणी का प्रथम चारित्र है तथा श्रावक-श्राविका के लिए एक शिक्षाव्रत। सामायिक-साधना जीवन में समत्व के अभ्यास की साधना है। आचार्यप्रवर ने अपने प्रवचन में सामायिक-साधना पर जो प्रवचन फरमाया है वह श्रावक-श्राविका के लिए तो उपयोगी है ही, श्रमण-श्रमणियों के लिए भी इसकी उपादेयता है, क्योंकि सामायिक में आर्त एवं रौद्र ध्यान का त्याग किया जाता है तथा समस्त सावद्य क्रियाओं से बचकर समता में रहने की साधना की जाती है। **-सम्पादक**

आत्म-स्वभाव में रमण करने वाले सिद्ध भगवंतों, आत्मिक गुणों का विकास करने वाले अरिहंत भगवन्तों, साधना से गुणों की ओर बढ़ने वाले संत भगवंतों को कोटिशः वन्दन।

आत्म-स्वरूप की ओर उन्मुख करने वाली साधना का नाम 'सामायिक' है। सामायिक साधना की ओर चरण बढ़ाने से पूर्व इसकी पृष्ठभूमि को समझ लेना उचित लगता है। जैसे- वट वृक्ष ऊपर में जितना विशाल दिखता है, भीतर में उतना ही दूर तक फैला हुआ होता है, जड़ें जितनी गहरी, वृक्ष उतना ही विशाल। इसी तरह मनुष्य की आस्था, श्रद्धा, मान्यता, विचारधारा जितनी दृढ़ होगी, आचार का वटवृक्ष तथा सद्गुणों के फल-फूल उतने ही अधिक लगेंगे। समय आने पर वटवृक्ष के पत्ते जरूर झड़ते हैं, पर तनों से बहती रसधारा उसे फिर हरा-भरा कर देती है, इसी तरह विपत्तियाँ या प्रतिकूलताएँ मनस्वी मनुष्यों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती, किन्तु समभाव से उन्हें सहन करने पर वे उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देती हैं। इस प्रकार सद्गुणों के मूल को सींचने वाली साधना सामायिक है।

जैसे आकाश सभी द्रव्यों का, पृथ्वी सभी जीवों का, दया सभी धर्मों का आधार है, वैसे ही सामायिक सभी गुणों का भाजन है, आधार है। समता के सहारे ही जीव में सभी गुण या धर्म टिकते हैं। जैसे-अंधेरे में बड़े-बड़े सुनसान महल और किले अटपटे और डरावने लगते हैं वैसे ही आत्मिक भाव, आत्म-विकास के बिना ये ऐश्वर्य और वैभव भी ईर्ष्या, द्वेष एवं लड़ाई के साधन बन जाते हैं। तीर्थंकर भगवान महावीर, गौतम बुद्ध और चक्रवर्ती भरत आदि महापुरुषों के पास रमणियाँ, राजपुत्र, अतुल सम्पत्ति, सुन्दर भव्य भवन, एकछत्र राज्य आदि मन बहलाने के बड़े-बड़े साधन थे, किन्तु उन्हें ये सब अटपटे एवं डरावने लगे और एक दिन वे इन वैभव-विलासों को छोड़, ममत्व को तोड़, आत्मविकास के उज्ज्वल पथ सामायिक या समता भाव की ओर बढ़ चले। आगमवचन सत्य है कि सामायिक व्रत स्वीकार न करने पर श्रावक को अपने जीवन के लक्ष्य का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भान नहीं होता। कहा है- **जे के वि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति जे गमिस्संति। ते सव्वे सामाइयप्पहावेण मुणेयव्वं।**

वस्तुतः चिंता, शोक, विपत्ति और अभाव के निवारण के लिये कितना ही धन-वैभव और सुख-साधन जुटा लें, भौतिक विद्या पढ़ लें, बौद्धिक विकास कर लें, वैज्ञानिक आविष्कार करलें, जल-थल-नभ पर आधिपत्य जमा लें अथवा इन सबसे ऊपर उठकर कान छिदवा लें, शिर मुंड़ा लें, धुणी रमा लें, गेरुएँ या श्वेत वस्त्र धारण करलें, वस्त्र मात्र को छोड़ दें, किन्तु जब तक हृदय में समभाव का उदय नहीं होगा तब तक समस्याओं का समाधान न हुआ है और न ही होगा। सामायिक की साधना इन सब समस्याओं का सम्यक् समाधान करती है।

यह तो आप जानते हैं कि यह संसार समरस नहीं है। यहाँ शीत, उष्ण, दिन-रात, कठोर-कोमल, सुख-दुःख एवं जन्म-मरण का भी जोड़ा है। सर्वत्र न सुख है, न दुःख, फिर भी मनुष्य सुख की प्राप्ति, सुख की वृद्धि वाली लालसाएँ पोषित करने की सोच में प्रयत्नशील रहता है। वैसे मनुष्य की सामान्य इच्छाएँ शरीर स्वस्थ हो, साथी अनुकूल हो, हर कार्य में पटुता हो, बुद्धि तीक्ष्ण हो, प्रवचन या वार्तालाप की शैली आकर्षक व मिठास भरी हो, इन सबके अतिरिक्त यदि तत्त्व का ज्ञान भी हो तो सोने में सुहागा ही कहेंगे। इन अनेक कामनाओं की पूर्ति होना या मिलना पुण्यशीलता का परिचायक है। पर इच्छाओं के साथ परिस्थितियाँ भी घेरा किये रहती हैं, वे प्रतिरोध करती हैं, अतः वह पद-पद पर दुःखी होने लगता है। जन्म के साथ रोग का, धन के साथ सात भय का, पद-योग्यता के साथ ईर्ष्या व मनोमालिन्य का कारण जुड़ा है। अतः साधारण व्यक्ति को यह जीवन दुःखों का घर प्रतीत होता है। लेकिन सामायिक की साधना वाले साधक के लिये यह जीवन खेल है। जैसे- बालक क्रीड़ा, विनोद तथा भावी जीवन की तैयारी के लिये खेल खेलते हैं। कल-कारखाना, खेती, व्यापार, उद्योग धंधे प्रारम्भ करने से पूर्व बारीकी से जानकारी का प्रशिक्षण रुचि सहित लेते हैं, फिर भी छोटी से बड़ी तक अगणित समस्याएँ प्रतिदिन आती हैं और उनको सुलझाना पड़ता है। सुलझाते हैं,उस समय निराशा के क्षण भी आते हैं। सोचते हैं- ऐसा खेल खेलते कितने जन्म, कितने युग, कितनी परिस्थितियाँ, पात्र और क्षेत्र बदल गये, लेकिन यह खेल अभी तक चल रहा है। यही चिंतन का मूल विषय है। इस खेल को कहाँ तक खेलते रहने की कामना है? या इस पर विराम लगाना है। यदि विराम लगाना है तो दिशा बदलिये, दशा अपने आप बदल जायेगी। इतनी समता से खेलिए कि जन्म ही नहीं लेना पड़े। निश्चय के साथ-आत्मा का विकास, पूर्णता तथा लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु शेष जीवन का खेल खेलने के लिये सहनशीलता में गति कीजिये। गतिशीलता के लिये सामायिक आवश्यक है। सामायिक का सतत अभ्यास हर समस्या का हल निकालता है। सामायिक की साधना वाला विपरीत परिस्थितियों में भी समभाव तथा सहनशीलता का आश्रय लेकर प्रसन्नतापूर्वक कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहता है।

सामायिक का फल तभी मिल सकता है जब सामायिक व्रत निरन्तर किया जाय। यह नहीं कि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक 1-2 दिन की, फिर छोड़ दी, 8-10 दिन बाद की और फिर महीने भर तक खूंटी पर टाँग दी। जिस प्रकार उद्योग धंधा, शिक्षा, रसोई, वृक्ष को लगन के साथ मेहनत करने पर वर्षों सींचने, खाद डालने पर वह फलदायी बनता है। इसी तरह प्रतिदिन समभाव के अभ्यास से विषम भावनाओं का जंग-कचरा-जाला और ज़हर समाप्त होता है। यदि सामायिक का फल पाना चाहते हो तो शिक्षाव्रत से शिक्षा लें कि जो दुःख एवं असमाधि के कारण हैं उन उपाधियों से मुक्त होना है। साधना उन्हीं की सुफल होगी जो समस्त परिस्थितियों में समभाव पर दृढ़ रहते हैं। समता जबरदस्ती लायी जाने वाली चित्त की अवस्था नहीं है, सामायिक सही समझ का परिणाम है। सामायिक के साधक को इस भ्रम से भी बचना चाहिये कि सामायिक/ प्रतिक्रमण वाला कैसा भी पाप करे, उसका पाप छूमंतर हो जाता है। ऐसी सोच सामायिक का मूल्य घटाने वाली है। मात्र निर्जरा अथवा कर्मक्षय के लिये सामायिक आचार का पालन करना है। दशवैकालिक अध्ययन-9 की गाथा 3-4 संकेत कर सावधान कर रही है-''नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा'' इस लोक, परलोक एवं सुख समृद्धि, कीर्ति, प्रशंसा आदि की दृष्टि से धर्माचरण नहीं करें। अतः दोषों को टाल, सावद्य प्रवृत्ति से पृथक् हो, निरवद्य प्रवृत्ति के वातावरण में विधि सहित नियमित रूप से साधनापूर्वक सामायिक की आराधना की जाय। सामायिक के साधक को सावद्य प्रवृत्तियों के प्रेरक-कुसंग, कुसम्पर्क, कुसाहित्य-कुदृश्यप्रेक्षण, दुश्चिंतन, दुर्व्यसन, दुर्ध्यान आदि दुष्प्रवृत्तियों से सतत बचते रहना चाहिये। निंदा, प्रशंसा, मान-अपमान एवं सर्व संयोग-वियोग को क्षणिक मान ''इदमपि गमिष्यति'' (यह भी चला जाएगा) के सूत्र पर आचरण वाला ही स्थितप्रज्ञ समभावी साधक होता है।

सामायिक की साधना केवल धर्मस्थान एवं 48 मिनट तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु इतनी विराट् हो कि जीवन की छोटी-बड़ी प्रत्येक क्रिया, प्रवृत्ति एवं व्यवहार के माध्यम से अन्यों को भी आकर्षित करे, प्रभाव दिखावे। जैसे- सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता, बादलों का पानी, शुद्ध वायु, अग्नि की उष्णता किसी एक क्षेत्र या व्यक्ति के अधिकार की बपौती नहीं है। वैसे ही साधना का प्रकाश किसी एक क्षेत्र या व्यक्ति तक सीमित नहीं, अपितु सर्वव्यापक है। धर्मस्थान में समता और बाहर निकलते ही विषमता। यह सच्चे सामायिक साधक का व्यवहार नहीं। उसे प्रतिकूल परिस्थिति में भी सहनशीलता बढ़ाकर दृढ़ता से सम्यक् व्यवहार करना चाहिए। यदि धर्मस्थान में भी अभ्यास कच्चा रहा, समता की उपासना नहीं कर सका, निद्रा, विषय, कषाय, विषमता को हटा न सका, मन-वाणी-काया को नहीं साध सका तो द्रव्य सामायिक भी भाव सामायिक के लक्ष्य से कोसों दूर है। वास्तविक भान पाने वाले के लिये सामायिक के शब्दों की व्याख्या व अर्थ को भी समझें- वास्तव में सामायिक का अर्थ और उद्देश्य प्राणिमात्र को आत्मवत् समझते हुए समत्व का व्यवहार करना है। सम=समभाव, सर्वत्र, आत्मवत् प्रवृत्ति, आय=लाभ, जिस प्रवृत्ति से, क्रिया से समभाव का लाभ हो, वृद्धि हो, वही सामायिक है। राग-द्वेष के प्रसंगों में मध्यस्थ (सम) रहना, विषम न होना सामायिक है।

समस्त जीवों पर मैत्री रखना साम है और उसकी आय सामायिक है। कई आचार्य ज्ञान-दर्शन-चारित्र

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को सम कहते हैं। भगवती सूत्र में भी आत्मा को ही सामायिक कहा है-**'आया खलु सामाइए।'** मोक्षाभिमुखी प्रवृत्ति सामायिक है। गुरुदेव हस्ती के अनुसार दण्ड से अदण्ड में लाने वाली क्रिया का नाम सामायिक है। श्रेष्ठ आचरण को भी सामायिक कहा है। अपने आप में सम हो जाना ही सामायिक है। तत्त्वार्थ टीका के अनुसार- सामायिक एक आध्यात्मिक साधना है। यह बाह्य वैभव, आडम्बर या प्रदर्शन की वस्तु नहीं। गुरुदेव का चिन्तन रहा कि सामायिक में स्वाध्याय आवश्यक है। बिना स्वाध्याय के सामायिक शुद्ध नहीं हो सकती। शास्त्रकारों ने सामायिक को मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख अंग बताया है। उचित समय पर आवश्यक कर्त्तव्य को भी सामायिक कहते हैं।

उक्त विभिन्न दृष्टिकोणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि सामायिक साधना मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करने वाली बहुआयामी सद्प्रवृत्ति है। सामायिक साधना वाला सामायिक काल में साधु की जीवन-चर्या से साक्षात्कार कर लेता है। इसकी साधना वाला नारकी एवं तिर्यञ्च गति के ताला लगाकर देव गति व मोक्ष गति को प्राप्त करता है।

सामायिक को हम पहले समझें, फिर स्वीकार करें, तो फिर सामायिक करनी नहीं पड़ेगी, स्वतः हो जायेगी। सामायिक सूत्र छह काय के जीवों को अपने समान समझने का रहस्य है। यह सूत्र पाँच इन्द्रियों और छठे मन रूपी छकड़ी के प्रपंच से मुक्त होने का उपाय है। सामायिक का पहला लक्षण आर्त्त-रौद्र का त्याग है। दूसरा लक्षण सावद्य योगों का त्याग है। पाप और सांप को कभी छोटा नहीं समझना चाहिये। ये दोनों ''अण थोवं वण थोवं'' के समान हैं। ऋण, व्रण, अग्नि, कषाय एवं बीज जैसे वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही छोटा पाप भी बढ़ते-बढ़ते पर्वताकार हो जाता है। सामायिक का तीसरा लक्षण सर्वेन्द्रिय संयम बताया है। इन्द्रियों के विषय ठग के समान हैं, जैसे-ठग प्रारम्भ में थोड़ा लोभ दिखाकर किसी भोले प्राणी को बुरी तरह मूंड लेता है, उसी तरह इन्द्रियों के लुभावने, मनोरम विषयों के बारे में समझना चाहिये। सामायिक साधना में आत्मशुद्धि का तत्त्व ही अधिक होता है। सर्वप्रथम **'करेमि भंते! सामाइयं'** से समत्व की प्रतिज्ञा होती है, पश्चात् **'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'** से निंदनीय वर्णनीय पापों का त्याग होता है तथा इसके पश्चात् आत्मशुद्धि के संदर्भ में 'पडिक्कमामि, निंदामि गरिहामि तथा 'अप्पाणं वोसिरामि' करते हैं, ये चारों साधना रूप शोधन के प्रतीक हैं।

समता के अभाव में की गई सारी साधना प्राण शून्य देह का भार ढ़ोने के समान है। मात्र कपड़े बदलकर, आसन बिछाकर घण्टे भर बैठ जाना, कुछ माला जप, कुछ भजन आदि बोल लेना सामायिक की वास्तविक साधना न होकर आचार्य भगवंत (आचार्य हस्ती) के शब्दों में दस्तूर की सामायिक है। इस औपचारिकता वाली परिपाटी से हटकर गुरुदेव ने सामायिक के साथ ज्ञान साधना (स्वाध्याय) को जोड़ा- फलस्वरूप जो परिणाम आए वे आपके सामने हैं- आज शास्त्रधारी स्वाध्यायियों की विशाल सेना पर्युषण पर्वाधिराज में संत-सतियों से वंचित क्षेत्रों में समय दान के साथ सेवाएँ दे रही है। उनकी दूरदर्शिता वाली सोच ने स्वाध्याय के प्रति जो रुचि, लगन, उत्साह का अंकुर प्रस्फुटित किया है वह आज सभी परम्पराओं में मूर्तरूप हो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चुका है। संकल्प, आदत, स्वभाव और संस्कार के क्रम से मानव जीवन को ध्येय की ओर ले जाने में शिक्षाव्रत बहुत ही सहायक बनते हैं।

भारतीय संस्कृति में मंत्र-जप-ध्यान आदि श्रेष्ठ कार्यों के लिये पूर्व तथा उत्तर दिशा उत्तम मानी गई है। स्थानांग सूत्र एवं विशेषावश्यक भाष्य में भी शास्त्र, स्वाध्याय एवं दीक्षा प्रदान तथा सामायिक, प्रतिक्रमण आदि 13 श्रेष्ठ कार्य एवं धर्म क्रियाएँ पूर्व या उत्तर दिशा की ओर बैठकर करने का विधान है। पूर्व दिशा जहाँ उदय पथ, प्रगति एवं क्रान्ति की सूचक है, वहाँ उत्तर दिशा दृढ़ता व स्थिरता की सूचक है। दिशा का ध्यान रखते हुए सामायिक में सिद्धासन, पद्मासन या पर्यंकासन से बैठना चाहिये। मेरुदण्ड सीधा, स्फूर्तिमान तथा मन एवं इन्द्रियाँ अडोल रहें, ऐसा प्रयास अपेक्षित है। निरन्तर और विधिपूर्वक की गई क्रिया ही सफलता की सूचक है। भगवान महावीर का सिद्धान्त ही 'कडे माणे कडे' है। अतः वीतरागता का ध्येय बनाकर साधना के समरांगण में कूद पड़ो। क्या कभी दीपक ने ऐसा रोना रोया कि मेरे पास इतने टन तेल हो, इतने किलो रूई हो, इतना बड़ा आकार हो, तब ही मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर इतने अंधकार से लड़कर पूर्ण प्रकाश कर सकूँगा। दीपक को ऐसे निकम्मे, बेकार शेखचिल्लियों के से मनसूबे बांधने की फुरसत नहीं है। आप सब दीपक से शिक्षा लेकर शिक्षाव्रतों का प्रश्रय लेकर गुणवर्धन का लक्ष्य रखें।

तीर्थेश प्रभु महावीर ने दिशा के साथ भाषा का जो अनमोल स्वरूप दिया वह भी स्तुत्य है। जनसाधारण के मध्य सहज-सरल बोले जाने वाली समझ में आने वाली अर्द्धमागधी भाषा में आगम वागरणा का सूत्र दिया। आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि सामायिक साधना देश के किसी भी कोने में हो रही हो या धर्मी भक्त-जन विदेशों में कर रहे हों, उन सबकी भाषा व विधि एक जैसी है। जैन धर्म के साधकों में एकरूपता वाली सामायिक साधना की यह अनूठी मिशाल विशिष्ट पहचान की द्योतक है।

जैन आगमों में सामायिक को छः आवश्यकों में पहला आवश्यक कहा है। ग्यारह अंगों के ज्ञान में (सामाइयमाइयाहिं एकारस अंगाइं) कहकर सामायिक को ज्ञान का सबसे पहला अंग कहा है। श्रावक के शिक्षाव्रतों में भी इसे पहला शिक्षाव्रत कहा है। श्रावक का धर्म अगार है, पाँच अणुव्रतों को स्वीकार कर श्रावक ने महापाप का त्याग किया, हिंसा आदि आस्रवों का आंशिक त्याग किया, तीन गुणव्रतों के द्वारा क्षेत्र की सीमा करने के साथ, उपभोग-परिभोग की वस्तुओं का परिमाण कर अनर्थ के पाप छोड़े, किन्तु इन सबके बावजूद इस त्याग वृत्ति में स्थायित्व तभी आयेगा, जब वह आत्मस्वरूप का 'भेदविज्ञान' कराने वाली सामायिक की आराधना करे, इसीलिये शिक्षाव्रत का उपदेश है। आचार्य हरिभद्र ने-''साधुधर्माभ्यासः शिक्षा'' अथवा ''पुनःपुन परिशीलनम् अभ्यासः शिक्षा'' शिक्षा का अर्थ करते हुए कहा- जो सद्धर्म की शिक्षा दे, ध्येय की प्राप्ति में विशेष सहायक हो और जिसका बार-बार पालन किया जाय उसे शिक्षाव्रत कहते हैं।

सामायिक की दो प्रमुख शिक्षाएँ हैं-

1. पर प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलना।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. समागत प्रतिकूलता को हँसते-हँसते सहन कर लेना।

ये दोनों शक्तियाँ समभाव की पराकाष्ठा पर लब्ध होती हैं अर्थात् सामायिक की सम्यक् साधना करने वाले साधक को प्राप्त होती हैं। जब आप विधि सहित सामायिक की साधना करेंगे तभी इसकी प्राप्ति होगी। आपको सामायिक करते-करते कितने वर्ष हो गये हैं? लेकिन आप सामायिक को कितना समझ पाते हैं? संख्या में सैकड़ों-हजारों सामायिक हो गई हैं। लेकिन सामायिक का स्वरूप क्या है, उसकी विधि क्या है? इसकी आराधना में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की शुद्धता कितनी रही है? क्या आपके कुछ ध्यान में आया है? सन्त-सतीगण जब भी सामायिक की प्रेरणा करते हैं तो उनके प्रति श्रद्धा और विनय होने से आप सामायिक कर लेते हैं। कई वर्षों से कर भी रहे हैं और उस सामायिक को स्मरण-भजन-स्वाध्याय के माध्यम से पूरा कर, सामायिक हो गई, ऐसी सन्तुष्टि कर लेते हैं। किन्तु समता की गहराई में जाकर अनुप्रेक्षा के माध्यम से सार निकालने का काम नहीं करते। सामायिक समता का वह सरोवर है, जिसके पास बैठने वाला भी शीतलता का अनुभव करता है, मानसिक शांति के आभास की प्रतीति करता है। सामायिक करने वाला बोले या न बोले, पास बैठने वालों को अनुभव हो कि हमें भी ऐसी ही शांति चाहिये।

वीतराग, सर्वज्ञ, सामायिक साधक भगवन्तों के चरणों में बैठने वाले अपना वैर विरोध तक भूल जाते हैं। यह तभी संभव है, जब इसका मर्म समझकर शुद्धि सहित सामायिक की जाय। शास्त्र का वचन है-"ते साहुणो जे समयं चरंति" अर्थात् साधु वे हैं- जो क्षमा, सहनशीलता, समता का आचरण करते हैं। विश्व के किसी भी देश और प्रान्त में- चाहे अमेरिका, इंगलैण्ड, कर्नाटक, महाराष्ट्र हो, किसी भी वेष में- भगवा कपड़ा, लंगोटी, श्वेत वस्त्र, नग्नता लिये हो, किसी भी मत या पंथ में- चाहे शैव, रामानुज, बौद्ध, जैन, पारसी हो, किसी भी अवस्था में- बाल, युवा या वृद्ध हो, किसी भी वर्ण में- चाहे ब्राह्मण,क्षत्रिय, ओसवाल, पोरवाल हो; उन सबकी पहचान, परख, कसौटी मात्र एक है कि-वे सब समता के सागर हों।

समता को प्राप्त करने के लिये सामायिक की साधना आवश्यक है। सामायिक की सम्यक् आराधना के लिए चार शुद्धियाँ बताई गई हैं- जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के नाम से जानी जाती हैं। उनको क्रम से समझना, जानना, उपयोग पूर्वक आचरित करना, साधक के लिये आवश्यक है।

द्रव्यशुद्धि-

सामायिक की आराधना में द्रव्यतः साधन औदारिक शरीर है, जो आपको मिला हुआ है। शरीर की शुद्धि का अर्थ नहा-धोकर उसे साफ-सुथरा, सजावट कर रखना नहीं, अपितु सभ्यता एवं विवेक के साथ बैठना, स्थिर रखना, अनावश्यक हलन-चलन नहीं करना है। इससे काया के कुआसन आदि 12 दोष टाले जाते हैं। द्रव्य का दूसरा आशय है- बाहरी पदार्थ अर्थात् नीचे पहनने का चोल पट्टा, धोती, लूंगी, ओढ़ने का दुपट्टा, चद्दर, कम्बल आदि। जहाँ तक हो सके- पेन्ट, पाजामा, सिले हुए ऐसे वस्त्र जिनका प्रतिलेखन सहजता से नहीं हो सके, काम में नहीं लेना चाहिये। बैठका, मुँहपत्ती, पूंजनी, माला, पुस्तक आदि सामायिक के द्रव्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधन हैं। आसन, वस्त्र आदि उपकरण अल्पारम्भी हों। वे कोमल, रोएँदार, गुदगुदे एवं रंग बिरंगे न होकर स्वच्छ सादे होने चाहिये। मुँहपत्ती गोटेवाली, कसीदे वाली न हो तथा गंदी, फटी, बेड़ौल और बिना नाप की भी नहीं होनी चाहिये। इसी तरह माला भी चाँदी की न हो, खुशबूदार चंदन की महक वाली न हो, जिससे मन बहक जाय। कारण कि द्रव्य मन पर बाहर के द्रव्यों का असर जल्दी होता है, अतः सामायिक में द्रव्य शुद्धि पर भी बल दिया है।

भगवान महावीर के शासन में घी-तेल-धान्य आदि के व्यापारी, मालाकर, प्रजापति आदि कई जाति के श्रावक साधना करने वाले थे। संसार की वेशभूषा में सामायिक करने पर, चिकने कपड़ों की गंध आने पर साधक का मन व्यापार की ओर जा सकता है, धान्य वाले की जेब में धान रहने पर संघट्टा हो सकता है, मालाकार की जेब में फूल रह सकता है, अतः सांसारिक वेश-भूषा हटाकर एकसी सादा वेशभूषा की बात कही गई है। जिससे धार्मिकता की यूनिफार्म नजर आये। जैसे- आरक्षी दल में सेना की, पाठशाला में विद्यार्थी की, चिकित्सालय में चिकित्सक एवं नर्सिंग स्टाफ की, कोर्ट में वकील की वेशभूषा उनकी कार्य पद्धति का स्वरूप दिखाती है। इसी प्रकार साधना-आराधना करने वाले सामायिक के साधक की भी एकसी वेशभूषा गरीब-अमीर का, राजा-महाराजा का, सेठ-साहूकार का, ऊँच-नीच का भेद मिटाकर, भक्ति की भावना बढ़ाकर, समता में सहायक होती है। इस वेशभूषा में साधना करने से परिवार के सदस्य, बाहर से आये मेहमान और किसी प्रयोजन से मिलने वाले दूसरे भाई भी आपको वेशभूषा में देख विक्षेप नहीं करेंगे तथा यदि आप साधकों के बीच सामायिक की वेशभूषा में साधना करते हुए निद्राधीन होकर प्रमाद में जाने लगे, उत्तेजना में आकर तेज बोलने लगे अथवा व्यापार या आरम्भ-सम्भारम्भ की बात करने लगे तो साथी-सहयोगी आपको सावचेत कर देंगे। भाईसाहब! अभी आप सामायिक में हैं, क्या कर रहे हैं? क्या बोल रहे हैं, कैसे नींद ले रहे हैं, क्यों प्रमाद कर रहे हैं? इस जागरण में यह द्रव्य वेश भूषा निमित्त बनेगी।

द्रव्य शुद्धि भाव शुद्धि का कारण है। सुमुख-दुर्मुख की बात सुनकर भावों से भयंकर युद्ध करने वाले राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को मुण्डित मस्तक ने, नरक में जाने वाले अध्यवसायों से हटाकर विशुद्धतम अध्यवसाय में पहुँचा कर केवलज्ञान प्राप्त करा दिया था। रजोहरण और मुखवस्त्रिका के उपकरण देखकर आर्द्रकुमार को अनार्य देश में भी जाति-स्मरण ज्ञान हो गया था। साधु की यही वेशभूषा और चर्या देखकर, राजमहलों में बैठा मृगापुत्र जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त कर साधु बनने को उद्यत हो गया था। द्रव्य-उपकरण विश्वास का कारण है। ऐसा तीर्थंकर भगवान महावीर ने अपनी अन्तिम वाणी उत्तराध्ययन के 23 वें अध्याय की 32 वीं गाथा में केशी गौतम के संवाद में समाधान करते हुए कही- 'लोगे लिंगपयोयणं।' अर्थात् लोक व्यवहार में व्रत का रक्षण करने के लिये लिंग अर्थात् वेश-भूषा विश्वास का कारण है। सामायिक साधक की इस वेशभूषा को देखकर अन्य धर्मी मुस्लिम आततायी भी साधक को स्थान देते हैं, सम्मान देते हैं, यहाँ तक कि छापा मारने (रेड) निरीक्षण करने आये दल के एवं सी.बी.आई. पुलिस के अधिकारी भी बिना निरीक्षण किये लौट जाते हैं। तीसरी बात

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यह है कि वेशभूषा साधना-समता में सहयोगी बनती है। जैसे- घोड़ी पर बैठा दूल्हा भी 100 गालियाँ सहन कर लेता है, साधक का वेष पहने हुआ बहुरूपिया भी सोने की मोहरें ग्रहण नहीं करता, महावीर एवं बुद्ध का नाटक करने वाला भी अनेक विपरीतताएँ सहन करता है, इसी तरह मैं भी अभी भगवान महावीर की धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार कर समता की साधना करने बैठा हूँ, अतः मुझे भी 18 पापों से दूर रहना है, ऐसी मन में दृढ़ता आती है।

जब आप यात्रा की, शयन की, शादी की, खेलने की, व्यायाम की, इन सबकी वेशभूषा अलग रखते हैं तो साधना की वेश-भूषा में लापरवाही क्यों? इन सब पर शायद आपका चिंतन चल सकता है- महाराज इतने बंधन लगायेंगे तो सामायिक करना ही छोड़ देंगे। पर भाई! घर के, दुकान के, मिलने-जुलने के आवश्यक कार्यों को छोड़कर जब आप साधना के लिये समय ही निकालते हैं तो आधा या पाव फल प्राप्त करने के बजाय, आप उसका पूर्ण लाभ उठा सकें, इस हेतु द्रव्य-स्वरूप की शुद्धि की बात की जा रही है।

यदि समता भाव प्रारम्भ में न भी आ पाये, तब भी द्रव्य सामायिक लाभदायक है। कारण कि उतने समय तक बाहर के हिंसा, झूठ आदि पाप से आप बच गये। दूसरे, देखने वालों में भी श्रद्धा-प्रतिष्ठा भी जमी। भावरूप लाख नहीं मिले तब भी द्रव्य रूप हजार अच्छे हैं। महल नहीं मिला तो फुटपाथ की बजाय झोंपड़ी भी अच्छी लगती है।

क्षेत्र शुद्धि-

किस स्थान पर बैठकर सामायिक की साधना करनी चाहिये? शास्त्र में श्रावक की साधना के लिये स्वतंत्र पौषधशाला का उल्लेख मिलता है। आनन्द, शंख पुष्कलि आदि श्रावक आत्मगुणों के पोषण के लिये पौषधशाला में सामायिक करते थे। सभी के लिये ऐसी अनुकूलता संभव नहीं है, उस स्थिति में जहाँ कोलाहल न हो, आरम्भ-समारम्भ एवं विकार का वातावरण न हो, चित्त में चंचलता नहीं आवे, ऐसे समभाव में सहायक क्षेत्र को उपादेय माना गया है। इसे स्थानक, उपाश्रय, सामायिक-स्वाध्याय भवन, साधना-आराधना स्थल किसी भी नाम से कहा जा सकता है। आज ये स्थल भी 10-20 चित्र लगाने से, दानदाताओं की नामावली से, सावद्य व्यवहार में काम लेने से, साधना में सहायक नहीं रहे हैं, तो घर-बंगलों की स्थिति भी अलग तरह की है। वहाँ डाइनिंग रूम, ड्राइंग रूम, किचन, बाथरूम, बेडरूम ये सब तो मिल सकते हैं, गार्डन व गैरेज, कर्मचारियों के रूम भी मिल जायेंगे, लेकिन साधना-आराधना का कक्ष (प्रेयर रूम) नहीं मिलता। जब आत्मशांति के लिये अमीरों के यहाँ ऐसे कक्ष नहीं मिलते, तो सामान्य स्थिति वालों के पास आवास की न तो बड़ी जगह होती है, न ही धन दौलत। अतः वे अपने घर में अलग से साधना कक्ष बनाने की स्थिति वाले नहीं होते। इसका कारण? साधना के प्रति श्रद्धा नहीं जगी है। कर्नाटक की ओर विहार करते हमने ऐसे सामान्य स्थिति वाले घर भी देखे हैं- जहाँ मात्र रसोई के अलावा दो कमरे हैं, फिर भी वे एक हाथ जितनी जगह में शिवलिंग स्थापित कर भक्ति करते देखे गये हैं। सामान्य साधकों के लिये सार्वजनिक एकान्त स्थान सामायिक/ पौषध की साधना के लिए मिलते हैं। आज कहीं-कहीं पर साधना-आराधना का लक्ष्य हटाकर साज-सज्जा से युक्त चित्रकारी वाले

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दानदाताओं के नाम से भरी हुई दीवारों वाले स्थानक बनाये जा रहे हैं, जो साधना के लिए उचित नहीं हैं। धर्मस्थान परिग्रह का स्थान नहीं बनना चाहिये। कारण कि क्षेत्र भी समता की साधना में सहयोगी होता है। एक-एक क्षेत्र का ऐसा प्रभाव है कि वहाँ गाय और बैल जैसे जानवर भी शेर का मुकाबला करते हैं। मात्र टीले पर बैठने से छोटे बालक भी ज्ञानियों, अनुभवियों जैसा न्याय कर देते हैं। साधक जहाँ साधना करते हैं वहाँ शेर, हिरण भी वैर भूलकर एक साथ बैठते हैं, इसके विपरीत लबान जैसे क्षेत्र में श्रवण जैसे भक्त को भी माता-पिता से श्रमदान मांगने की कुमति जग जाती है।

आचार्य भगवंत (पूज्य हस्तीमल जी महाराज) के श्री चरणों में जोधपुर से आगोलाई जाने का प्रसंग बना। एक स्थान पर जहाँ सैनिकों का बारूद रखा हुआ था, बम आदि विस्फोटक पदार्थ थे वहाँ उनकी सुरक्षा हेतु अग्नि का समारम्भ तो दूर, धूम्रपान भी निषिद्ध था। हमारे भीतर भी कषायों का बम और विषयों का बारुद भरा हुआ है। अतः घर में आरम्भ-समारम्भ वाले स्थान से बचकर विशुद्ध क्षेत्र जहाँ चित्त में चंचलता नहीं आती हो, विषय विकार नहीं जगते हों, कोलाहल से मन चञ्चल नहीं बनता हो, ऐसे समभाव के क्षेत्र उपादेय हैं, ऐसे स्थान पर सामायिक करनी चाहिये, कारण कि-समभाव की साधना करने वाले साधक को समाधि में सहायक क्षेत्र की आवश्यकता रहती है, जैसे- जब तक निर्भय होकर उड़ना नहीं आता, चिड़िया एवं कबूतर के बच्चे को घोंसलें में रखा जाता है, लालटेन की लौ को काँच लगाकर रक्षण किया जाता है, ब्रह्मचर्य पालन हेतु नववाड़ से उसका रक्षण किया जाता है, अमूल्य रत्नों को तिजोरी में रखा जाता है, रोगी को निरोग करने के लिये पथ्य का पालन करवाया जाता है और विद्यार्थी भी चौराहे पर बैठने के बजाय एकान्त में बैठकर विद्यार्जन करता है, इसी तरह समभाव की साधना करने वाले साधक को निरवद्य, शान्त स्थान में रहना आवश्यक है।

सुना है, जिसे साँप डस गया हो, उसे मन्त्रोपचार एवं औषधियों से निर्विष बनाये जाने के बाद भी जब बादल आते हैं तो विष जोर पकड़ता है, व्यक्ति में पागलपन उत्पन्न होता है, कभी वह मूर्च्छित भी हो जाता है, वैसे ही गृहस्थी के घर में पारिवारिक जनों के संग में अर्थात् आरम्भ और विषय-कषाय के स्थान में सामायिक करने वाले साधक के मन में विषय विकार जगते हैं, मोह जगता है और वह भी समभाव से अस्थिर हो पागलपन करने लग जाता है, अतः क्षेत्र-शुद्धि आवश्यक कही गई है।

शान्त, एकान्त स्थान से शास्त्रकारों का अभिप्राय है कि धर्म का बीज, हृदय का खेत, बोने वाले सद्गुरु एवं स्वाध्याय की खाद, इतना होने पर भी यदि समभाव का अंकुर नहीं लगता है तो यही समझना चाहिये कि हृदय के खेत की भूमि अर्थात् साधना का क्षेत्र विपरीत है। आगमों के अन्तर्गत सामायिक की साधना को श्रेष्ठतम साधनाओं में माना है। महिमा बताते हुए कहा है-

दिवसे दिवसे लक्खं देइ, सुवण्णस्स खंडियं एगो।
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स।।

लक्ष मुद्राओं का दान एक सामायिक की समानता नहीं कर सकता।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

काल शुद्धि-

दशवैकालिक अध्ययन 5 उद्देशक 2 गाथा 4 में- 'काले कालं समायरे' वाक्य है जिसका आशय है कि जिस समय जो कार्य करणीय हो, उसी समय में उस कार्य को सम्पन्न करें। अतः साधक को योग्य समय का विचार करके ही सामायिक की साधना करनी चाहिये। ऐसी ही सामायिक निर्विघ्न सम्पन्न होती है। कई महाशय उचित-अनुचित समय का विचार किये बिना सामायिक करने बैठ जाते हैं। फल यह होता है कि उनका मन अपेक्षित शांति की अनुभूति नहीं कर पाता। संकल्प-विकल्प की उधेड़बुन में उनकी सामायिक-साधना गुड़-गोबर हो जाती है। जहाँ तक हो सके सामायिक-साधना सूर्योदय से पूर्व या पश्चात् के समय में किये जाने की भावना रखें। वैसे सामायिक-साधना के लिये कोई काल बुरा नहीं है, सद् कार्यों के लिये हर समय शुभ है।

भगवान महावीर ने निशीथ सूत्र 10.37 के माध्यम से साधुओं के लिये कथन किया है-''जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा णच्चा न गवेसइ न गवेसंतं वा साइज्जइ.....आवज्जइ चउम्मासियं परिहारठाणं अणुग्घाइयं।'' यदि कोई साधु, बीमार साधु की सेवा, सार संभाल को छोड़, किसी अन्य कार्य में लग जाए तो उसको गुरु चौमासी का प्रायश्चित्त आता है। जब साधु के लिये ग्लान-वृद्ध रोगी की सेवा का विधान है तब सांसारिक मनुष्य का दायित्व तो परिवार के प्रति और भी अधिक है। वह वृद्ध, असहाय, रोगी आदि की सेवा कर उपकार से उऋण होने का लक्ष्य रखे। अतः गृहस्थ सेवा आदि का समय टाल कर ही सामायिक करे। बीमार को छोड़ सामायिक करना उचित नहीं। वृद्ध,रोगी अपनी आवश्यकता से पुकारता रहे, और आप कहो कि मैं सामायिक में हूँ, सेवा के समय ऐसी साधना में आपकी समता व सहनशीलता कितनी सुरक्षित रह सकेगी, विचारणीय है। सर्वप्रथम आपका उत्तरदायित्व है कि परिवार व वृद्ध को संभालें, यदि आपके नियम ही है तो अन्य व्यवस्था कर ही सामायिक करें। काल शुद्धि से तात्पर्य यह है कि जिस समय में अन्य कोई विशिष्ट कार्य नहीं हो एवं आप स्वभाव में, शान्तता से आत्मभावों में रमण कर सकें, साधना के लिये वही काल श्रेष्ठ है।

भाव शुद्धि-

मन-वचन-काया की शुद्धता बनी रहना ही भाव शुद्धि है। मन की चंचलता, वाणी की चपलता, कायिक असंयतता को उपयोग सहित तजकर भावशुद्धि के समीपस्थ स्थित होना है, ऐसे ही महापुरुषों का जीवन आकर्षण का चुम्बकीय केन्द्र होता है- पूज्य गुरुदेव के बारे में कहे शब्द-''मनस्येकं, वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्'' कितने सटीक हैं। ''मन-वचन-कर्म तीनों में एकता रखने वाले महात्मा से सब प्रभावित होते हैं।''

हम शुद्धि को मन, वचन एवं काया की अपेक्षा भी समझें।

(1) मनःशुद्धि- मन की गति विचित्र है, मन ही मनुष्यों के कर्म-बंध और मोक्ष का कारण है। संत लोगों का काम उचित-अनुचित का ध्यान दिलाकर सर्चलाइट दिखाना है। बुद्धिवादी लोग कहते हैं कि मन में अशांति के समय सामायिक नहीं करनी चाहिए। ऐसा तर्क करने वालों को ध्यान देना चाहिये कि दवा, रोग की स्थिति में ही

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ली जाती है, वैसे ही राग और विकारों की दशा में शान्ति व मुक्ति (छुटकारा) पाने के लिये सामायिक की आराधना आवश्यक है। मन के बाहर जाने का सबसे बड़ा कारण राग है, इसलिये इसे कम करो, राग कम करने का उपाय भी है- ''बाहरी पदार्थों को अपना मानना छोड़ दीजिये।'' आप में से कौन-कौन ऐसा साहस वाला है, जिनका मन पर नियंत्रण है? जिनका मन नियन्त्रित है, उनकी इन्द्रियाँ विषयों में आकर्षित नहीं होती। मन यदि सधा हुआ है तो आपको जैसा जितना मिलेगा, उसी में संतोष कर लोगे। मात्र तन और वाणी से तो क्रिया होती रहे और मन कहीं अन्यत्र भटकता रहे तो उसे द्रव्य क्रिया समझिये। मानसिक दुर्बलता से ही मनुष्य सांसारिक पदार्थों की ओर खिंचता है, गाँठ बांधकर रखिए। अस्थिर मन से सामायिक व्रत की बराबर साधना नहीं होती। जिनके मन के विकार निकल गये, गुरुदेव ने उनको श्रमण व सुमन कहा है। मन के विकारों का वेग सबसे तीव्रतम होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक सैकण्ड में प्रकाश की गति 1,80,000 मील, विद्युत की 2,88,000 व विचारों की गति 22,65, 120 मील तक है। इस मन को पाँचों इन्द्रियों का राजा कहकर सम्बोधित किया गया है। यह आकर्षण-विकर्षण, इष्ट-अनिष्ट, योग्य-अयोग्य, कार्य-अकार्य में भेद समझे बिना उनमें लिप्त या रचा-पचा रहता है।

लोभ और अज्ञान मानसिक चंचलता को बढ़ाने वाले हैं। इस चंचलता को घटाने के लिये मन की दिशा को बदलने के लिये एकाग्रता से सामायिक कीजिये। मन बदल जाता है तो जीवन बदलते देर नहीं लगती। मन-वचन-काय योग की शुभ प्रवृत्ति से शुभ कर्मों का बंध होता है। सामायिक और स्वाध्याय की ललक व अभ्यास विषम भावों से हटाकर मन को समभाव की सरिता में अवगाहन का अवसर प्रदान करते हैं। देव, गुरु एवं धर्म की अविनय आशातना नहीं करते हुए भक्तिभाव पूर्वक यदि सामायिक की साधना की जायेगी तो अवश्य ही मन की शुद्धता बढ़ती जाएगी।

(2) वचन शुद्धि- मन एक गुप्त एवं परोक्ष शक्ति है, परन्तु वचन शक्ति तो प्रकट है। उस पर प्रत्यक्ष अंकुश लगाकर हिताहित परिणाम का विचार कर ही बोलना चाहिए। वाणी का संयम, तन का संयम, मन का संयम ही हमारी आत्मशुद्धि में सहायक होता है। गुरुदेव के शब्दों में-''विचार की भूमिका पर ही आचार के सुन्दर महल का निर्माण होता है।'' अतः साधक का कर्तव्य है कि वह सामायिक काल में सामायिक व्रत की स्मृति रख वचन को गुप्त रखने का पूरा विवेक रखे- वचनों को गुप्त रखने का आशय- ''कुवयण, सहसाकारे, सच्छंदं, कलहं च। विगहा, विहासोऽसुद्धं निरवेक्खो मुणमुणा दोसा दस'' से है। क्रोध-मान-माया-लोभ के वशीभूत हो अतिशयोक्तिपूर्ण, चापलूसी भरे, दीन व विपरीत अप्रियकारी वचनों का वर्जन कर स्वाध्याय में रत रहेंगे, तो वचन शुद्धि बनी रह सकेगी। तन का संयम रोग से और वाणी का संयम कलह से बचाता है। संसार की समस्त वस्तुएँ बनने पर विनष्ट हो जाती हैं, किन्तु उत्तम जीवन एक बार बना लिया तो वह विनष्ट नहीं होता। इसके लिये शारीरिक और वाचिक संयम आवश्यक है। यदि इन दोनों पर संयम कर लिया तो मन आसानी से साधना की ओर उन्मुख हो जायेगा। मौन साधना, कम बोलना, आवश्यकता होने पर थोड़े शब्दों में नाप तोलकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्टता के साथ भाव प्रकट करना ये सब वचन शुद्धि के सहायक कारण हैं। ज्यादा कार्य करने वाला हमेशा कम बोलने वाला ही होगा। आप भी परिमित एवं हितकारी सुभाषित वचनों का आश्रय लेकर दाक्षिण्य भावी बनें, ऐसी मंगल भावना है।

(3) कायशुद्धि- कायशुद्धि से तात्पर्य शारीरिक शुद्धि से नहीं, अपितु कायिक संयम से है। आसन विजय, दृष्टि विजय और मन विजय- ये तीनों प्रकार की साधनाएँ सामायिक में आवश्यक हैं। सामायिक में उचित व स्थिर आसन से बैठने से एकाग्रता का वर्धन होता है। उठने-बैठने, खड़े होने व हाथ पैर को अनावश्यक हिलाने-डुलाने जैसी प्रवृत्ति सामायिक के समय में नहीं हो। इसके लिए काया के 12 दोषों को टालने का खयाल रखना अपेक्षित है। बाह्य आचरण ही आन्तरिक शुद्धि का दर्पण है। स्थानांगसूत्र के तृतीय ठाणा में प्रभु ने स्पष्ट कहा है-''मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे''- हर मनुष्य के पास मन-वचन और काया के सुप्रणिधान की तीन निधियाँ हैं- जो नवनिधियों की दाता हैं। फिर भी मानव अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं कर रहा। तन योग से, मनोयोग से और वाणी योग से सामायिक की साधना की जाए तो अनन्त-अनन्त कर्म समाप्त हो सकते हैं। आप सब मात्र सुनकर ही नहीं रह जाएं, अपितु कुछ कर सकने का, आगे बढ़ने का भी संकल्प करें। सामायिक की साधना का चरम एवं परम लक्ष्य रखें। इससे मन भी अदण्ड बन जायेगा। वचन भी अदण्ड बन जायेगा और काया भी अदण्ड बन जायेगी।

सामायिक का मूल लक्ष्य विषय कषाय घटाकर समभाव की प्राप्ति है। ज्ञान पूर्वक समता भाव किसी वेश, क्षेत्र और समय में आ सकते हैं। यथा-भरत चक्रवर्ती को अनित्य भावना से आरिसा भवन में केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इलायची कुमार को डोरी पर नाचते विकार भाव नष्ट होकर समता स्वभाव की प्राप्ति हो गई। घाणी पीले जाते हुए भी द्वेष-क्रोध का दावानल लगाने की बजाय पूर्ण समभाव की प्राप्ति हो गई। तात्पर्य यह है कि विशिष्ट भाव वाले साधकों के लिये द्रव्य, क्षेत्र और काल की बाहरी शुद्धि आवश्यक नहीं है। लेकिन सामान्य साधकों के लिये समता भाव की प्राप्ति हेतु भाव शुद्धि के लिये ही द्रव्य-क्षेत्र-काल की शुद्धि आवश्यक मानी गई है। कारण कि हर व्यक्ति स्थूलिभद्र की तरह वेश्या के आकर्षक आंगन रूप क्षेत्र, षट्रस भोजन रूप द्रव्य के मिलने पर शील रूप स्वभाव में स्थिर नहीं रह सकता है। उन्होंने समभाव की पूर्णता को, उसके शिखर को पा लिया था। यदि समभाव की प्राप्ति नहीं हुई हो तो व्यक्ति कितना ही तीव्र तप करे, जप करे, कितनी ही क्रिया पाले, मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। सामायिक के बिना न कभी मोक्ष हुआ है, न वर्तमान में हो रहा है और न ही भविष्य में होगा।

आप तो मन बदलने के लिये, कषायों को जीतने के लिये सामायिक साधना में रत रहने का अभीष्ट लक्ष्य रखिये। एक दिन मंजिल तक पहुँचने में अवश्य समर्थ होंगे....इन्हीं मंगल भावों के साथ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org